प्रश्न 2. गीता के द्वितीय अध्याय का सारांश अपने शब्दों में वर्णित करें।
अथवा, गीता के द्वितीय अध्याय की संक्षिप्त कथा लिखिए।

उत्तर– वेद समस्त भारतीय ज्ञान-विज्ञान का साक्षात् निदर्शन है। इसके मन्त्रों में अनेकानेक विषयों की व्याख्या की गई है। और उपनिषदों को ज्ञानकाण्ड की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। समस्त उपनिषदों का सारांश श्रीमद्भगवद्गीता है। अत: यह भी वेद का ही भाग है। यह यथार्थ भी लगता है क्योंकि सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान, कर्म की विवेचना गीता में की गयी है।

सम्पूर्ण साहित्य में इस काव्य का अद्वितीय स्थान है। क्योंकि इसमें ही सर्वप्रथम जगन्नियन्ता के स्वरूप का साक्षात् निदर्शन मानव अर्जुन को ही पाता है। और भगवान के श्रीमुख की वाणी सर्वप्रथम वही दृष्टिगत होती है। गीता में भी इसके द्वितीय अध्याय का अन्यतम स्थान है क्योंकि इसमें ही सर्वप्रथम आत्मा के स्वरूप और कर्म की समुचित विवेचना की गई है। हम भी आत्मा के स्वरूप और कर्म का दिग्दर्शन करें। यथा—

सर्वप्रथम संजय अर्जुन की कायरता का वर्णन करते हुए कहता है कि इस प्रकार से करूणा करके परिव्याप्त और आँसूओं से परिपूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों से शोकयुक्त उस अर्जुन के प्रति भगवान मधुसूदन ने यह वचन कहा—हे अर्जुन तुमको इस विषम स्थल में यह अज्ञान कैसे प्राप्त हुआ क्योंकि यह न तो श्रेष्ठ पुरुषों से आचरण किया गया है और स्वर्गलोक तथा कीर्ति को ही देने वाला है। अत: तुम नपुंसकता-कायरता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़े हो जाओ। तब अर्जुन कहता है—हे मधुसूदन मैं रणभूमि में भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के प्रति किस प्रकार से बाणों के द्वारा युद्ध करूँगा क्योंकि वे दोनों ही पूजनीय हैं। इसलिए इन महानुभावों को न मारकर इस लोक में भिक्षा का अन्न ही भोगना श्रेयस्कर समझता हूँ। इन्हें मारकर तो इस संसार में रक्त से सने हुए अर्थरूप-कामयुक्त भोगों को ही तो भोगूँगा। यह भी नहीं हम जानते कि कायरता से युक्त हुए स्वभाव वाले धर्म के विषय में मोहग्रस्त हुआ आपसे मैं पूछता हूँ कि कल्याणयुक्त इस समय मेरे लिये जो उचित है उसे कहिये। इस भूमि में निष्कण्टक धन-धान्य सम्पन्न राज्य को और देवताओं के स्वामीपन को भी प्राप्त कर मैं उस उपाय को नहीं देखता हूँ जो कि मेरी इन्द्रियों के सुखाने वाले शोक को दूर कर सके। संजय बोले—हे राजन् निद्रा को भी जीतने वाले अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज से इस प्रकार कहकर फिर भी भगवान से ऐसे स्पष्ट कहकर कि मैं युद्ध नहीं करूँगा और मौन होकर रथ के मध्य भाग से उठकर पिछले भाग में बैठ गया।

इसके बाद हे भरतवंशी धृतराष्ट्र अन्तर्यामी श्री कृष्ण महाराज ने दोनों सेनाओं के बीच में उस शोकयुक्त अर्जुन को हँसते हुए यह वचन कहा—हे अर्जुन तुम शोक नहीं करने योग्य के लिए शोक करता है और पण्डितों के सुवचनों को कहता है परन्तु पण्डितजन—जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गये हैं—उनके लिए भी शोक नहीं करते हैं। न तो ऐसा ही है कि मैं किसी समय में नहीं था अथवा तू नहीं था अथवा यह राजा लोग नहीं थे

और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे। जैसे जीवात्मा की इस देह में कुमार, युवा और जरा अवस्थारूप स्थूल शरीर का विकार अज्ञान से आत्मा में भासता है, वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त होता सूक्ष्म शरीर का भी विकार अज्ञान से ही आत्मा में भासता है। अत: तत्वज्ञ पुरुष इस बारे में मोहित नहीं होता है। सर्दी, गर्मी और सुख-दु:ख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो क्षणभंगुर और अनित्य हैं इसलिये तुम उनको सहन करो। हे पुरुष श्रेष्ठ, सुख-दु:ख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर सकते वह मोक्ष के लिये योग्य होता है। असत् वस्तु का अस्तित्व नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस न्याय के अनुसार इन दोनों का ही तत्व ज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है। जिससे यह सम्पूर्ण संसार परिव्याप्त है उसको नाशरहित जानो क्योंकि उस अविनाशी का विनाश नहीं है। और नाशरहित अप्रमेय नित्यस्वरूप जीवात्मा के यह सब शरीर नाशवान कहे गये हैं—अत: तुम युद्ध करो। और जो इस आत्मा को मरनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है वे दोनों ही नहीं जानते हैं कि यह आत्मा न मरता है और न मारा जाता है। यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा होकर के फिर होनेवाला है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य शाश्वत और पुरातन है और शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता है। हे अर्जुन जो पुरुष इस आत्मा को नाशरहित, नित्य अजन्मा और अव्यय जानता है वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और किसको मारता है। जिस तरह मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है।

इस आत्मा को हथियार इत्यादि काट नहीं सकते हैं, और इसको आग नहीं जला सकती है तथा इसको जल नहीं गीला कर सकता है और वायु इसे नहीं सूखा सकती है। यह आत्मा अच्छेद्य है। यह आत्मा अदाह्य है। यह अक्लेद्य और अशोष्य है। तथा यह आत्मा नि:सन्देह नित्य सर्वव्यापक, अचल स्थिर रहनेवाला और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त अचिन्त्य विकार रहित कहा जाता है। अत: इस आत्मा को ऐसा जानकर तुम शोक करने के योग्य नहीं हो अर्थात् तुझे शोक नहीं करना चाहिये। यदि इसको तुम हमेशा जन्मने वाला और सदा मरनेवाला मानो तो भी इस प्रकार शोक करने योग्य नहीं है। क्योंकि जन्मने वाले की मृत्यु और मरनेवाले का निश्चित जन्म होना सिद्धि होता। इससे भी तुम इस बिना उपाय वाले इस विषय में शोक करने के योग्य नहीं हो।

सम्पूर्ण प्राणी जन्म से पहले बिना शरीर वाले और मरने के बाद भी बिना शरीर वाले ही हैं, केवल बीच में ही शरीर वाले हैं। इस विषय में क्या चिन्ता है। कोई महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता और कोई दूसरा आश्चर्य की तरह इसके तत्व को कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्मा को को आश्चर्य की तरह सुनता है और कोई सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जानता है। यह आत्मा सबके शरीर में सदा ही अवध्य है। अत: सम्पूर्ण भूत प्राणियों के लिए तुम शोक करने के योग्य नहीं हो। और अपने धर्म को देखकर भी तुम भय करने के योग्य नहीं हो क्योंकि धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारक कर्त्तव्य क्षत्रिय के लिए नहीं है।

हे अर्जुन अपने आप प्राप्त हुये और खुले हुये स्वर्ग के द्वाररूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते हैं। और यदि तुम इस धर्मयुक्त संग्राम को नहीं करेगा तो अपने धर्म और कीर्ति को खोकर पाप को ही प्राप्त होगा। और सबलोग तेरी बहुत काल तक रहने वाली अपकीर्ति का भी कथन करेंगे और यह अपकीर्ति मानवीय पुरुष के लिय मरण से भी अधिक बुरी होती है। और जिनके तुम बहुत मानवीय होकर भी अब तुच्छता की प्राप्त होगे वे

महारथी लोग तुम्हें भय से उपराम हुये युद्ध से अलग मानेंगे। और तेरे वैरी लोग तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुये बहुत से न कहने योग्य वचनों को कहेंगे। फिर इससे अधिक दु:ख क्या होगा? या तो मरकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा जीतकर पृथ्वी को भोगेगा। इससे हे अर्जुन युद्ध करने के लिए निश्चय स्वभाव वाला होकर खड़े हो जाओ।

जय-पराजय या लाभ-हानि और सुख-दु:ख को समान समझ कर उसके उपरान्त युद्ध के लिये तैयार हो इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा। हे पार्थ यह बात तेरे लिये ज्ञान-योग के बारे में कही गयी। और इसी को अब निष्काम कर्मयोग के विषय में सुन कि जिस बुद्धि से युक्त हुआ तुम कर्मों के बन्धन को अच्छी तरह से नाश करेगा। इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं होता है इसलिये इस निष्काम कर्मयोग रूप धर्म की थोड़ी भी साधना जन्म-मृत्युरूप महान् भय से उद्धार कर देती हैं।

हे अर्जुन इस कल्याण मार्ग में निश्चयात्मक बुद्धि एक ही है और अज्ञानी सकामी पुरुषों की बुद्धियाँ बहुत भेदोंवाली अनन्त होती है। जो सकामी पुरुष केवल फलश्रुती में प्रीति रखने वाले, स्वर्ग को ही परमश्रेष्ठ माननेवाले, इससे बढ़कर और कुछ नहीं है—ऐसे कहने वाले हैं वे अविवेकीजन जन्मरुप कर्मफल को देनेवाली और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये बहुत सी क्रियाओं के विस्तार वाली इस प्रकार की जिस दिखाऊ युक्त शोभावाली वाणी को कहते हैं, उस वाणी द्वारा हरे हुये चित्तवाले तथा भोग और ऐश्वर्य में आसक्तिवाले उन पुरुषों के अन्त:करण में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है।

तीनों गुणों के कार्य इस संसार को विभ्रम करने वाले है इसलिये तुम निष्कामी और सुख-दु:खादि द्वन्द्वों से रहित नित्य वस्तु में स्थित और योगक्षेम को न चाहने वाले और आत्मपरीक्षक होओ। मनुष्य को सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर छोटे जलाश्य में जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी तरह से ब्रह्म को जानने वाले ब्राह्मण का भी सब वेदों में उतना ही प्रयोजन रहता है। इससे हे अर्जुन तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे, फल में कभी नहीं, और तुम कर्मों की वासना वाला भी मत होओ तथा तेरे कर्म न करने मात्र से भी प्रीति न होवे। हे अर्जुन आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान-बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर, यह समत्व भाव ही योग कहा जाता है। इस समत्वरूप बुद्धियोग से सकाम कर्म अत्यन्त ही तुच्छ है। इसलिये इस समत्वबुद्धि योग का आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल की वांसना वाले अत्यन्त दीन होते हैं। समत्व बुद्धियुक्त पुरुष पुण्य-पाप दोनों को इस लोक में ही त्याग देता है। अर्थात् उनमें लिप्त नहीं होता है। इससे समत्व बुद्धि योग के लिये ही चेष्टा कर। यह समत्वबुद्धि युक्त योग ही कर्मों में चतुराई है अर्थात् कर्म बन्धन से छुटने का उपाय है। क्योंकि बुद्धियोग युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होनेवाले फल को त्यागकर जन्मरुप बन्धन से छुटे हुए निर्दोष अर्थात् अमृतमय परम पद को प्राप्त होते हैं।

हे अर्जुन जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल से बिल्कुल तर जायगी तब तुम सुनने योग्य और सुने हुए के वैराग्य को प्राप्त होगा, जब तेरी अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को सुनने से विचलित हुई बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में अचल और स्थिर ठहर जायेगी, तब तुम समत्वरूप योग को प्राप्त होगा। हे केशव समाधि में स्थित बुद्धि वाले पुरुष का क्या लक्षण है और स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे चलता है। हे अर्जुन जिस काल में यह पुरुष मन में स्थिति सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है उस काल में आत्मा से ही आत्मा में संतुष्ट हुआ स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है। दु:खों की प्राप्ति में उद्वेग रहित है जिसका मन और सुखों की प्राप्ति में दूर हो गयी है जिसकी स्पृहा नष्ट हो गये हैं जिसके राग, भय और क्रोध—ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है।

जो पुरुष सर्वत्र स्नेह रहित हुआ उस-उस शुभ तथा अशुभ वस्तुओं को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है। और कछुआ अपने अण्डों को जैसे समेट लेता है वैसे ही यह पुरुष जब सब ओर से अपनी इन्द्रियों को और इन्द्रियों के विषयों को समेट लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है। इन्द्रियों के द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते है, परन्तु राग से निवृत्ति नहीं होती है किन्तु इस पुरुष का तो राग भी परमात्मा को साक्षात् करके निवृत्त हो जाता है। और हे अर्जुन जैसे कि यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुष के भी मन को यह प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियाँ बलात्कार से हर लेती है, उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मेरे परायण स्थित होवो, क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती है उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है।

विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अविवेक अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है और स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश होने से वह पुरुष अपने श्रेय साधन से गिर जाता है। परन्तु स्वाधीन अन्तःकरण वाला पुरुष रागद्वेष से रहित अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता अर्थात् स्वच्छता को प्राप्त होता है। उस निर्मलता के होने पर उसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है।

हे अर्जुन साधनारहित पुरुष के अन्तःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं होती है। और उस अयुक्त के अन्तःकरण में आस्तिक का भाव भी नहीं होता है और बिना आस्तिक भाववाले पुरुष को शान्ति भी नहीं होती, फिर शान्ति रहित पुरुष को सुख कैसे हो सकता है। क्योंकि जल में वायु नाव को जैसे हर लेता है वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के बीच में जिस इन्द्रिय के साथ मन रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुष की बुद्धि को हरण कर लेती है। इससे हे महाबाहो जिस पुरुष की इन्द्रियाँ सब प्रकार से इन्द्रियों को विषयों से वश में की हुई होती है उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

हे अर्जुन सम्पूर्ण भूत-प्राणियों के लिये जो रात्रि है उस नित्य शुद्ध बोध स्वरूप परमानन्द में भगवत् को प्राप्त हुआ योगी पुरुष जागता है और जिस नाशवान क्षणभंगुर सांसारिक सुख में सब भूत प्राणी जागते हैं, तत्व को जानने वाले मुनि के लिये वह रात्रि है। और जैसे सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र के प्रति नाना नदियों के जल उसको चलायमान न करते हुए ही समा जाते हैं वैसे ही जिस स्थिर बुद्धि पुरुष के प्रति सम्पूर्ण भाग किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं वह पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है, न कि भोगों को चाहनेवाला।

हे अर्जुन जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममता रहित और अहंकार रहित स्पृहा-रहित हुआ बर्तता है वह शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ब्रह्म को प्राप्त हुये पुरुष की यह स्थिति है। इसको प्राप्त होकर मोहित नहीं होता है और अन्तकाल में भी इस निष्ठा में ही स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता के इस द्वितीय अध्याय में अर्जुन को विषाद हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण उसके विषाद को उसके श्रेष्ठजनों सम्बन्धियों के प्रति मोहग्रस्तात को दूर कर देते हैं और आत्मा के स्वरूप, कर्म की श्रेष्ठता कर्मयोगी, समत्वबुद्धि, सच्चे सत्यनिष्ठ योगी, ब्रह्म को प्राप्त हुये पुरुष की स्थिति सांख्यशास्त्र का निरूपण बहुत ही सुन्दरतम ढ़ंग से किया है। और अन्त में ब्रह्मानन्द के निरूपण के साथ ही इस द्वितीय अध्याय की कथा का